पूना प्रवचन में स्वयं कथित अपना जीवन वृत्तान्त

पन्द्रहवां व्याख्यान (4 अगसत 1875)

हमसे बहुत से लोग पूछते हैं कि हम कैसे जानें कि आप ब्राह्मण हैं और कहते हैं कि आप अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों की चिट्ठियाँ मगा दें या आपको जो पहचानता हो उसको बतलावें।

इसलिए मैं अपना कुछ वृत्तान्त कहता हूँ। दूसरे देशों की अपेक्षा गुजरात में कुछ मोह अधिक है, यदि मैं अपने पूर्व मित्रों तथा सम्बन्धियों को अपना पता दूं या पत्र-व्यवहार करूँ तो मेरे पीछे एक ऐसी व्याधि लग जावेगी, जिससे कि मैं छूट चुका हूँ। इस भय से कि कहीं वह बला मेरे पीछे न लग जावे, पत्रादि मँगा देने की चेष्टा नहीं करता।

धारंगधरा नाम का एक राज्य गुजरात देश में है। इसकी सीमा पर एक मौरवी नगर है, वहाँ मेरा जन्म हुआ था। मैं औदीच्य ब्राह्मण हूँ । औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी होते हैं, परन्तु मैंने बड़ी कठिनता से यजुर्वेद पढ़ा था। मेरे घर में अच्छी जमींदारी है। इस समय मेरी अवस्था 50 वर्ष की होगी। आठवें वर्ष मेरे बाद एक बहन पैदा हुई थीं। मेरा एक चचेरा दादा था, वह मुझसे बहुत ही प्यार करता था। मेरे कुटुम्बियों के इस समय 15 घर होंगे। मुझको लड़कपन में ही रूद्राध्याय सिखलाकर शुक्ल यजुर्वेद का पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। मेरे पिता ने मुझको शिव की पूजा में लगा दिया। दशवें वर्ष से पार्थिव (मिट्टी के महादेव) की पूजा करने लग गया।

मुझे पिता ने शिवरात्रि का व्रत रखने को कहा था। परन्तु मैंने शिवरात्रि का व्रत न किया। तब शिवरात्रि की कथा मुझे सुनाई, वह कथा मेरे मन को बहुत मीठी लगी और मैंने उपवास रखने का पक्का निश्चय कर लिया। मेरी

माँ कहती थी कि उपवास मत कर, मैंने माता का कहना न मानकर उपवास किया। मेरे यहाँ नगर के बाहर एक बड़ा देवल है। वहाँ शिवरात्रि के दिन रात के समय बहुत लोग एकत्रित होते हैं और पूजा करते हैं । मेरे पिता, मैं और बहुत मनुष्य इकट्ठे थे। पहिले पहर की पूजा कर ली, दूसरे पहर की पूजा भी हो गयी। अब बारह बज गये और धीरे-धीरे आलस्य के कारण लोग जहाँ के तहाँ झुकने लगे। मेरे पिता को भी निद्रा आ गई। इतने में पुजारी बाहर गया। मैं इस भय से न सोया कि कहीं मेरा उपवास निष्फल न हो जाय।

इतने में यह चमत्कार हुआ कि मन्दिर में बिल से चूहे बाहर निकले और महादेव की पिण्डी के चारों तरफ फिरने लगे। पिण्डी पर जो चावल चढ़ाये हुए थे, उन्हें ऊपर चढ़कर खाने भी लगे मैं जागता था, इसलिए यह सब कौतुक देख रहा था। इससे एक दिन पहले शिवरात्रि की कथा मैं सुन ही चुका था। उसमें शिव के भयानक गणों, उसके पाशुपत अस्त्र, बैल की सवारी और उसके आश्चर्यमय सामर्थ्य के विषय में बहुत कुछ सुन चुका था। इसलिए चूहों के इस खेल को देखकर मेरी लड़कपन बुद्धि आश्चर्य में पड़ गई और मैंने सोचा कि जो शिव अपने पाशुपत अस्त्र से बड़े -बड़े दैत्यों को मारता है, क्या वह ऐसे तुच्छ चूहों को भी अपने ऊपर से नहीं हटा सकता। इस प्रकार की बहुत-सी शंकायें मेरे मन में उठने लगीं।

मैंने पिताजी को जगाकर पूछा कि ये महादेव इस छोटे चूहे को नहीं हटा देते। पिताजी ने कहा कि तेरी बुद्धि बड़ी भ्रष्ट है, यह तो केवल देवता की मूर्त्ति है। तब मैंने निश्चय किया कि जब मैं इसी त्रिशूल धारी शिव को प्रत्यक्ष देखूंगा, तब ही पूजा करूँगा, अन्यथा नहीं। ऐसा निश्चय करके मैं घर को गया, भूख लगी थी माता से खाने को माँगा। माता कहने लगी, 'मैं तुमसे पहले ही कहती थी कि तुझसे भूखा नहीं रहा जायेगा। तूने ही हट करके उपवास किया।'' माँ ने फिर मुझे खाना दिया और कहा कि दो दिन तो उनके अर्थात् पिताजी के पास मत जाना और न उनसे बोलना, नहीं तो मार खायेगा, खाना खाकर मैं सो गया। दूसरे दिन आठ बजे उठा, मैंने सारी कथा अपने चाचा से

कह दी। मेरे चाचा ने बुद्धिमत्ता से मेरे पिता को समझा दिया कि इसको आगे विद्या पढ़नी है, इसलिए व्रत उपवास आदि इससे कुछ न कराया करो।

इस समय मैं इनसे यजुर्वेद पढ़ता था और दूसरे एक पण्डित मुझे व्याकरण पढाते थे। सोलहवें या सत्रहवें वर्ष में यजुर्वेद समाप्त हुआ। इसके बाद मैं अपनी जमींदारी के गाँव में पढ़ने के लिए गया।
वहाँ हमारे घर में एक दिन नाच होता था, उस समय मेरी छोटी बहन मरणासन्न थी। कण्ठ बन्द हो गया था। मैं वहाँ गया और उसके बिस्तरे के पास खड़ा हुआ। सबसे पहले मैंने मौत वहीं देखी। जब मेरी बहन मर गई , तो मुझे बड़ा भय हुआ। मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सबको इसी प्रकार मरना है। सब लोग रोते थे, पर मेरी छाती भय से धड़क रही थी। इसलिय मेरी आँखों से एक आँसू भी नहीं गिरा। मेरी यह दशा देखकर पिता ने मुझको पाषाण हृदय कहा।

मेरी माता मुझे बहुत प्यार करती थी, किन्तु उसने भी ऐसा ही कहा। मुझे सोने के लिए कहते थे पर मुझे कभी अच्छी तरह नींद न आती थी, किन्तु मैं हर घड़ी चौंक- चौंक उठता था और मन में भांति- भांति के विचार उठते थे। बहन के मरने के पश्चात् लोक रीति के अनुसार पाँच छः बार रोना होने पर भी जब मुझे रोना नहीं आया तो सब लोग मुझे धिक्कारने लगे।

उन्नीसवें वर्ष में मुझसे अत्यन्त स्नेह रखने वाले मेरे चाचा को भी मृत्यु ने आन दबाया। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देखने लगे। मैं उनके पास बैठा था, मुझे देखकर उनके टप-टप आँसू गिरने लगे। मुझे भी उस समय बहुत रोना आया, मैंने रो-रो कर आँखें सुजा लीं। ऐसा रोना मुझे कभी नहीं आया। इस समय मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि चाचा की तरह मैं भी मर जाऊँगा। ऐसा विश्वास हो जाने पर अपने मित्रों और पण्डितों से अमर होने का उपाय पूछने लगा। जब उन्होंने योगाभ्यास की ओर संकेत किया तो मेरे मन में यह सूझी कि घर छोड़कर चला जाऊँ । इस समय मेरी आयु 20 वर्ष की थी।

मेरी बढ़ी हुई उदासीनता देखकर पिता ने जमींदारी का काम करने को

कहा, परन्तु मैंने न किया फिर पिता ने निश्चय किया कि मेरा विवाह कर दें ताकि मैं बिगड़ न जाऊँ। यह विचार घर में होने लगा, यह मालूम करके मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि विवाह कभी नहीं करूँगा। यह भेद मैंने एक मित्र से प्रकट किया तो उसने मना किया और विवाह करने के लिए जोर देने लगा। मेरा विचार घर छोड़कर चले जाने का था, पर किसी ने सलाह न दी। जो कहते वे विवाह करने को ही कहते। एक महीने के भीतर विवाह करने की तैयारी हो गई। यह देखकर मैं एक दिन शौच के मिश (बहाने) से एक धोती साथ लेकर घर से निकल पड़ा और एक सिपाही द्वारा कहला भेजा कि एक मित्र के घर गया हूँ। मैं एक पास के गाँव में गया। इधर घर में मेरी प्रतीक्षा दस बजे रात तक होती रही। इसी रात को चार घड़ी के तड़के मैं गाँव से निकलकर आगे चल दिया और अपने गाँव से दस कोस के अन्तर पर एक गाँव के हनुमान् के मन्दिर पर ठहरा। वहाँ से चलकर सायला योगी के पास गया, परन्तु वहाँ पर मुझे शान्ति नहीं मिली और लोगों से सुना कि लालाभक्त नामी एक योगी है। तब उनकी ओर चल पड़ा। मार्ग में एक वैरागी एक मूर्त्ति रखकर बैठा हुआ था। बात-चीत होने पर वह बोला कि अगुंली में सोने का छल्ला डालकर वैराग्य की सिद्धि कैसे होगी? मुझे इस प्रकार खिजाकर मेरे तीनों छल्ले मूर्त्ति के भेंट चढ़वा लिए। लालाभक्त के पास जाकर मैं योग-साधना करने लगा। रात को एक वृक्ष के ऊपर बैठ गया, तो वृक्ष के ऊपर घूघू बोलने लगा। उसकी आवाज सुनकर मुझे भूत का भय हुआ। मैं मठ के भीतर घुस गया।

फिर वहाँ से अहमदाबाद के समीप कोट काँगड़ा नामी गाँव में आया, वहाँ बहुत से वैरागी रहते थे। एक कहीं की रानी वैरागी के फन्दे में आ गई थी। इस रानी ने मेरे साथ ठट्टा किया, परन्तु में जाल से छूट गया, इस स्थान पर मैं तीन महीने रहा था। यहाँ पर वैरागी मुझ पर हंसी उड़ाने लगे, इसलिए जो रेशमी किनारेदार धोती मैं पहनता था, वह मैंने फेंक दी। मेरे पास केवल 3 रुपये रह गये थे, इनसे सादी धोती खरीदकर पहन ली और तब से अपना

ब्रह्मचारी नाम रख लिया।

उन्हीं दिनों मैंने सुना कि कार्तिक के महीने में सिद्धपुर के स्थान पर एक मेला होता है। यह सोचकर कि वहाँ शायद मुझे कोई योगी मिल जावे और अमर होने का मार्ग बता दे, मैंने सिद्धपुर को प्रस्थान किया। मार्ग में मुझे अपने गाँव का आदमी मिला, उसने जाकर मेरे बाप को बतला दिया कि सिद्धपुर की ओर चला गया हूँ। मेरा पिता और घर के लोग बराबर मेरी खोज में ही थे। इस आदमी की जबानी सुनकर मेरे पिता चार सिपाहियों सहित सिद्धपुर को आये। मैं एक मन्दिर में बैठा हुआ था। एकाएक मेरे पिता और चार सिपाही मेरे सामने आकर खड़े हो गये। देखते ही मेरा कलेजा धड़कने लगा। इस भय से कि पिता मुझको मारेंगे, मैंने उठकर उनके पाँव पकड़ लिए। वे मुझ पर बहुत ही क्रुद्ध हुए, मैंने उनसे कहा कि एक धूर्त बहकाकर मुझे यहाँ लाया हैं, मैं घर जाने को तैयार ही था कि आप आ गये। उन्होंने मेरा तूँबा तोड़ डाला और मेरी छाई फाड़ डाली और कुछ कपड़े मुझे दिए। मेरे पीछे दो सिपाही सदा के लिए कर दिए। रात को जहाँ मैं सोता था एक सिपाही मेरे सिरहाने बैठा जागता रहता था। मैंने चाहा कि इस सिपाही को धोखा देकर निकल जाऊँ और इसलिए मैं यह जानने के लिए कि सिपाही रात को सोता है या नहीं, खुद भी जागता रहा। सिपाही को तो यह निश्चय हो जाये कि मैं सो रहा हूँ और इसलिए मैं नाक से खर्राटे भरने लगता था। इस प्रकार तीन रातें जागना पड़ा, चौथी रात सिपाही को नींद आ गई, तब एक लोटा हाथ में ले बाहर निकला। यदि कोई देख पावे तो झट कह दूँगा कि शौच को जाता हूँ । वहाँ से निकलकर गाँव के बाहर एक बाग में चला गया। प्रातःकाल होते ही एक वृक्ष पर भूखा बैठा रहा। रात को जब अँधेरा हो गया, सात बजे नीचे उतरकर चल दिया। अपने गाँव और घर के मनुष्यों से यह अन्तिम भेंट थी। इसके पश्चात् एक बार प्रयाग (इलाहाबाद) में मेरे गाँव के बहुत से लोग मुझको मिले, परन्तु मैंने उनको अपना पता नहीं दिया, तब से आज तक कोई नहीं मिला।

सिद्धपुर से बड़ोदे को आया, वहाँ से नर्मदा नदी के तट पर विचरने

लगा इस समय नर्मदा के तट पर योगानन्द स्वामी रहते थे। यहाँ एक दक्षिणी ब्राह्मण कृष्ण शास्त्री भी रहते थे, इनके पास मैं कुछ-कुछ पढ़ता रहा। तत्पश्चात् राजगुरु के पास वेदों को पढ़ा। 23 या 24 वर्ष की अवस्था में मुझे चाणूद कनाली में एक संन्यासी मिला। मुझे पढ़ने में बहुत ही अनुराग था और संन्यास आश्रम में पढ़ने का बहुत सुभीता होता है। इसलिए उसके उपदेश से मैंने श्राद्ध आदि करके संन्यास ले लिया, तब से ही दयानन्द सरस्वती नाम धारण किया। मैंने दण्ड गुरु के पास धर दिया।

चाणूद में दो गोसाईं आये, जो राजयोग करते थे, मैं भी उनके साथ अहमदाबाद तक गया। वहाँ पर एक ब्रह्मचारी मिला। पर कुछ दिनों बाद मैंने उसका साथ छोड़ दिया। वहाँ से मैं जाते-जाते हरिद्वार पहुँचा, वहाँ कुम्भ का मेला था। वहाँ से हिमालय पहाड़ पर उस जगह पहुँचा जहाँ से अलकनन्दा नदी निकलती है। बर्फ बहुत पड़ी हुई थी और पानी भी बहुत ठण्डा था। वहाँ बर्फ लगने से पैर में कुछ तकलीफ हुई। हिमालय पर्वत पर पहुँच कर यह विचार हुआ कि यहीं शरीर गला दूँ।

फिर मन में आया कि यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के बाद शरीर छोड़ना चाहिए। यह निश्चय करके मैं मथुरा में आया। वहाँ मुझे एक धर्मात्मा संन्यासी गुरु मिले। उनका नाम स्वामी विरजानन्द था, वे पहले अलवर में रहते थे। इस समय उनकी अवस्था 81 वर्ष की हो चुकी थी। उन्हें अभी तक वेद-शास्त्र आदि आर्ष ग्रन्थों में बहुत रुचि थी। ये महात्मा दोनों आँखों से अँधे थे, और इनके पेट में शूल का रोग था। ये कौमुदी और शेखर आदि नवीन ग्रन्थों को अच्छा नहीं समझते थे और भागवत आदि पुराणों का भी खण्डन करते थे। सब आर्ष ग्रन्थो के वे बड़े भक्त थे। उनसे भेंट होने पर उन्होंने कहा कि तीन वर्ष में व्याकरण आ जाता है। मैंने उनके पास पढ़ने का पक्का निश्चय कर लिया। मथुरा में एक भद्र पुरुष अमरलाल नामक थे, उन्होंने मेरे पढ़ने के समय में जो-जो उपकार मेरे साथ किए, मैं उनको भूल नहीं सकता। पुस्तकों और खाने-पीने का प्रबन्ध सब उन्होंने बड़ी उत्तमता से कर दिया। जिस दिन उन्हें

कहीं बाहर जाना होता, तो वे पहिले मेरे लिए भोजन बनाकर और मुझे खिलाकर बाहर जाते थे। सौभाग्य से ये उदारचेता महाशय मुझे मिल गये थे। विद्या समाप्त होने पर मैं आगरे में दो वर्ष तक रहा, परन्तु पत्र व्यवहार के द्वारा या कभी-कभी स्वयं गुरुजी की सेवा में उपस्थित होकर अपने सन्देह निवृत्त कर लेता था। आगरे से मैं ग्वालियर को गया, वहाँ कुछ-कुछ वैष्णव मत का खण्डन आरम्भ किया, वहाँ से भी स्वामी जी को पत्रादि भेजा करता था। वहाँ माधवमत के एक आचार्य हनुमन्त नामी रहते थे। वे किरानी का स्वांग भर कर शास्त्रार्थ सुनने बैठा करते थे। एक-आध बार जब मेरे मुख से कोई अशुद्ध शब्द निकला, तो उन्होंने अशुद्धि पकड़ ली। मैंने कई बार उनसे पूछा कि आप कौन हैं, परन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि मैं एक किरानी हूँ, सुनने-सुनाने से कुछ बोध प्राप्त हुआ है। एक दिन इस विषय में वार्त्तालाप हुआ कि वैष्णव लोग जो माथे पर खड़ी रेखा लगाते हैं, वह ठीक हैं या नहीं। मैंने कहा यदि खड़ी रेखा लगाने से स्वर्ग मिलता हो, तो सारा मुँह काला करने से स्वर्ग से भी कोई बड़ी पदवीं मिलती होगी। यह सुनकर उनको बड़ा क्रोध आया और वे उठ गये। तब लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि यही उस मत के आचार्य हैं।

ग्वालियर से मैं रियासत करौली को गया। वहाँ पर एक कबीर पन्थी मिला, उसने एक बार वीर के अर्थ कबीर किए थे और कहने लगा कि एक कबीर उपनिषद् भी है। वहाँ से फिर मैं जयपुर को गया, वहाँ हरिश्चन्द्र नामी एक बड़े विद्वान् पण्डित थे। वहाँ पहिले मैंने वैष्णव मत का खण्डन करके शैव मत स्थापित किया। जयपुर के महाराज सवाई रामसिंह भी शैवमत की दीक्षा ले चुके थे। शैवमत के फैलने पर हजारों रूद्राक्ष की मालायें मैंने अपने हाथों से लोगों को पहनाईं। वहाँ शैवमत का इतना प्रचार हुआ कि हाथी घोड़ों के गलों में भी रूद्राक्ष की माला पहनाई गई।

जयपुर से मैं पुष्कर को गया, वहाँ से अजमेर आया। अजमेर पहुँचकर शैवमत का भी खण्डन करना आरम्भ किया। इसी बीच में जयपुर के महाराजा लाटसाहब से मिलने के लिए आगरे जाने वाले थे। इस आशंका से कि कहीं

वृन्दावन निवासी प्रसिद्ध रंगाचार्य से शास्त्रार्थ न हो जावे। राजा रामसिंह ने मुझे बुलाया और मैं भी जयपुर पहुँच गया, परन्तु वहाँ मालूम होने पर कि मैंने शैवमत का खण्डन आरम्भ कर दिया है राजा साहब अप्रसन्न हुए । इसलिए मैं भी जयपुर छोड़कर मथुरा में स्वामी जी के पास गया और शंका- समाधान किया। वहाँ से मैं फिर हरिद्वार को गया। वहाँ अपने मठ पर पाखण्ड मर्दन लिखकर झण्डा खड़ा किया। वहाँ वाद-विवाद बहुत सा हुआ फिर मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सारे जगत् से विरूद्ध होकर भी गृहस्थों से बढ़कर पुस्तक आदि का जंजाल रखना ठीक नहीं है। इसलिए मैंने सब कुछ छोड़कर केवल एक कौपीन (लंगोट) लगा लिया और मौन धारण किया। इस समय जो शरीर में राख लगाना शुरू किया था, वह गत वर्ष बम्बई में आकर छोड़ा। वहाँ तक लगाता रहा था। जब से रेल में बैठना पड़ा, तब से कपडे पहनने लगा। जो मैंने मौन धारण किया था, वह बहुत दिन सध न सका, क्यों कि बहुत से लोग मुझें पहचानते थे । एक दिन मेरी कुटी के द्वार पर एक मनुष्य यह कहने लगा 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्'' अर्थात् भागवत से बढ़कर और कुछ नहीं है, वेद भी भागवत से नीचे हैं।''

तब मुझसे यह सहन न हो सका, तब मौन व्रत को छोड़कर मैंने भागवत का खण्डन प्रारम्भ किया। फिर यह सोचा कि ईश्वर की कृपा से जो कुछ थोड़ा बहुत ज्ञान अपने को हुआ है, वह सब लोगों पर प्रकट करना चाहिए। इस विचार को मन में रखकर मैं फरूखाबाद को गया, वहाँ से रामगढ़ को गया। रामगढ़ में शास्त्रार्थ शुरू किया। वहाँ पर जब दो चार पण्डित बोलते थे, तब मैं कोलाहल शब्द कहा करता था, इसलिए आज तक वहाँ के लोग मुझको कोलाहल स्वामी कहा करते हैं। वहाँ पर चक्रांकितों के चेले दस आदमी मुझे मारने को आये थे, बड़ी कठिनता से उनसे बचा। वहाँ से फरूखाबाद होकर कानपुर आया कानपुर से प्रयाग गया। प्रयाग में भी मारने वाले आये थे। पर एक माधवप्रसाद नामी धर्मात्मा पुरुष था, उसकी सहायता से बचा। यह गृहस्थ माधव प्रसाद ईसाई मत ग्रहण करने को तैयार था, उसने इन सब पण्डितों को

नोटिश दे रखा था, कि यदि आप अपने आर्य धर्म में तीन महीने के भीतर मेरा विश्वास न करा देंगे, तो मैं ईसाई धर्म को स्वीकार कर लूँगा मेरे आर्य धर्म पर निश्चय दिला देने से वह ईसाई नहीं हुआ। प्रयाग से मैं रामनगर को गया। वहाँ के राजा की इच्छानुसार काशी के पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में यह विषय प्रविष्ट था कि वेदों में मूर्ति पूजा है या नहीं। मैंने यह सिद्ध करके दिखा दिया कि प्रतिमा शब्द तो वेदों में मिलता है परन्तु उसके अर्थ तौल नाप आदि के हैं। वह शास्त्रार्थ अलग छपकर प्रकाशित हुआ है, जिसको सज्जन पुरुष अवलोकन करेंगे।

इतिहास शब्द से ब्राह्मण ग्रन्थ ही समझने चाहिए इस पर भी शास्त्रार्थ हुआ था। गत वर्ष के भाद्रपद मास में मैं काशी में था। आज तक चार बार काशी में जा चुका हूँ। जब-जब काशी में जाता हूँ तब-तब विज्ञापन देता हूँ कि यदि किसी को वेद में मूर्ति पूजा का प्रमाण मिला हो तो मेरे पास लेकर आवें परन्तु अब तक कोई भी प्रमाण नहीं निकाल सका।

इस प्रकार उत्तरीय भारत के समस्त प्रान्तों में मैंने भ्रमण किया है। दो वर्ष हुए कि कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, जयपुर आदि नगरों में मैंने बहुत से लोगों को धर्मोपदेश दिया है। काशी फरूखाबाद आदि नगरों में चार पाठशालाएँ आर्ष- विद्या पढ़ाने के लिए स्थापित की हैं। उनमें अध्यापकों की उच्छृंखलता से जैसा लाभ पहुँचना चाहिए था नहीं पहुँचा। गत वर्ष मुम्बई आया, यहाँ मैंने गुसांई महाराज के चरित्रों की बहुत कुछ छानबीन की। बम्बई में आर्य समाज स्थापित हो गया। बम्बई,अहमदाबाद, राजकोट आदि प्रान्तों में कुछ दिन धर्मोपदेश किया, अब तुम्हारे इस नगर में दो महीनों से आया हुआ हूँ।

यह मेरा पिछला इतिहास है, आर्य धर्म की उन्नति के लिए मुझ जैसे बहुत से उपदेशक आपके देश में होने चाहिए। ऐसा काम अकेला आदमी भली प्रकार नहीं कर सकता, फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है उसे चलाऊँगा।

अब अन्त में ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सर्वत्र आर्य समाज कायम होकर मूर्त्ति पूजादि दुराचार दूर हो जावें, वेद शास्त्रों का सच्चा अर्थ सबको समझ में आवे और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण हो कर देश की उन्नति हो जावे। पूरी आशा है कि आप सज्जनों की सहायता से मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः